International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232
Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 3; Issue 5; September 2017; Page No. 43-44

दलित आत्मकथाकारों द्वारा शिक्षण संस्थाओं में झेले गये दंश

[1] पूजा रानी, [2] डॉ0 अखिलेश दुबें
[1] शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, पी.एन.जी. रा.पी.जी. कालेज, रामनगर, उत्तराखंड, भारत।
[2] प्रोफेसर हिन्दी, MGAHV, Verdha, Maharashtra, India

प्रस्तावना

हम लोग यह जानते है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद बहुत बड़ी संख्या में दलित वर्ग शिक्षित हुआ है। परन्तु आज भी बहुसंख्यक दलित समाज अशिक्षा के कारण पुराने रीति रिवाजों परम्पराओं और रूढियों को मानते है। और उन्ही में अपना जीवन तलाशते है अपने बच्चों को भी उन्ही के अनुसार ढालते है। किसी भी बच्चे का बचपन गीली– मिटटी की तरह होता है। उसे जैसा चाहो वैसा रूप दिया जा सकता है। सभी बच्चों में बाल सुलभ सुखद भावनाएँ होती है। बच्चे हर किसी को समान समझते है। उनके सामने न तो कोई छोटा बड़ा न ही कोई भेदभाव छुआछूत। दलितों के बीच भेदभाव वर्षो से चला आ रहा है। दलितो के बच्चों को जन्म के बाद से ही भेदभाव व अपमान का सामना करना पड़ता है। जिनमें बाल सुलभ सुखद भावनाएँ कल्पानाएँ होती है। परन्तु उनकी ये बाल सुलभ भावनाएँ इस जातिगत भेदभाव के चलते हर समय आहत होती रहती हैं। और फिर वे खुशी व चहक की जगह निराशा में बदल जाती है। जैसा कि हम जानते है कि आत्कथाओं को मूल आधार सत्य है। जिसमें कल्पना का बिल्कुल भी प्रयोग नही किया जाता और स्पष्ट वादिता इसका मुख्यगुण है। दलित आत्मकथाये समाज केन्द्रित होती है दलित आत्मकथाये भोगें हुए जीवन का यर्थाथ रूप होती है। आत्मकथा एक आत्मपरक विधा होती है। इसके द्वारा व्यक्ति के जीवन के छिपे अदृश्य अंश पाठकों के सामने स्पष्ट होते है। आत्मकथाओं में कल्पना का समावेश नही होता है। दलित आत्मकथा में लेखक द्वारा भोगी गयी यातना, अपमान, तिरस्कार संघर्ष के कठिन दौर का चित्रण होता है। हिन्दी दलित आत्मकथाओं अपने अपने पिंजरे, जूठन, मुर्दहियया, दोहरा अभिशाप, शिकंजे का दर्द, तिरस्कृत, संतप्त, मेरा बचपन, मेरे कंधो पर आदि के द्वारा हिन्दू समाज में फैली भेदभाव की भावना जिससे कि विद्या के मन्दिर भी वंचित नही रहे है वहां पर बच्चों के साथ होने वाले शोषण को देखने का प्रयास किया गया है। दलित वह है जिसका दलन किया गया हो दबाया गया हो, कुचला गया हो, अपने समाज में जो हजारों वर्षो से प्रताड़ित किये जाते रहे है। जिन्हे मानवीय अधिकारों से हमेशा वंचित रखा गया हो जिस वर्ग को अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए स्वयं की बनायी गयी झूठी बर्बर मान्यताओं को मानने के लिए उनका पालन करने के लिए उन्हे बाध्य किया गया हो।

दलित आत्मकथाओं के अध्ययन से ये ज्ञात होता है कि दमन शोषण अन्याय अपमान अत्याचार का दर्द क्या होता है ये सिर्फ एक दलित ही जान सकता है जो कि सादियों से शोषित और पीड़ित है। दलित समाज को रात दिन मेहनत मजदूरी करने के बाद भी कुछ हासिल नही होता आशिक्षा के कारण उनकी सामाजिक गुलामी भी खत्म नही होती। भूमिहीन, गरीब, निर्धन, अभावग्रस्त और अपनढ़ समाज को अनेकों समस्याओं से प्रतिदिन जूझना पड़ता है। हम साधारणतया तथा कह सकते हैं कि दलित जीवन का सच वही उजागर कर सकता है जिसने ये जीवन स्वयं जिया हो। सूरजपाल जी लिखते है–

''दलित पीड़ा के दंश का वही जान सकता है जिसने इसे भोगा या सहा हो''[1]

सभी दलित आत्मकथाओं में हर जगह दलित समाज के दमन के अनेकों प्रसंग हमारे समाने जीवन्त हो उठते है। जैसा कि ओमप्रकाश वाल्मीकि जी अपनी आत्मकथा में बताते है– एक रोज हेड मास्टर कालीराम ने अपने कमरे में बुलाकर क्या नाम है वे तेरा? ओम प्रकाश मैने डरते डरते धीमें स्वर से अपना नाम बताया हेडमास्टर को देखते ही बच्चे सहम जाते थे। पूरे स्कूल में उनकी दहशत थी। चुहड़े का है। हेड मास्टर का दूसरा सवाल उछला। जी ठीक है..... वह जो सामने शीषम का पेड खड़ा है, उस पर चढ़ जा और टहनियों तोड़ के झाडू बना ले। पत्तों वाली झाडू बनाना और पूरे स्कूल को ऐसा चमका दे जैसा सीसा तेरा तो ये खानदानी काम है। जो फटाफट लग जा काम में''[2]

हमारी शिक्षण संस्थाओं में जातिगत भेदभाव की घटनाएं आज भी देखने को मिल जाती है फिर से शिक्षण संस्थान प्राथमिक स्तर के हो या उच्च स्तर के हो या उच्च सभी में जातिगत भेदभाव मिलता है। दलित वर्ग के लोगों के लिए शिक्षा प्राप्ति करना एक बहुत बड़ी समस्या बन कर खड़ी है। हम सभी जानते है कि शिक्षा से जीवन बेहतर बनता परन्तु इस भेदभाव के चलते दलित वर्ग शिक्षा प्राप्त करने से वंचित रह जाते है। दलित जीवन का सबसे कड़वा सच जाति प्रथा और छुआछूत के रूप में हमारे सामने आता है। सुशीला टकभोरे जी अपनी आत्मकथा में बताती है–

''स्कूल में शिक्षक और विद्यार्थी सभी छुआछूत का पालन करते थे। कक्षा में सबसे पीछे टाट पट्टी पर नही फर्श पर बैठना पड़ता था। दलित छात्र अपने हाथ से पानी भी नही पी सकता था। इसके लिए उसे दूसरे की कृपा पर निर्भर रहना पड़ता था![3]

आत्मकथाओं के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि दलित समाज को बहुत तरह के अपमान को सहना पड़ता है, ओर वे इसे अपनी नियति मानकर चुप रहते है इसके विरोध में अपनी आवाज उठाने से डरते है। मोहनदास नैमिशराय जी अपनी आत्मकथा में लिखते है–

''हमारे स्कूल को बाहर के लोग अक्सर चमारो का स्कूल कहा करते थे, जैसे चमारों का कुआ, चमारो का नल, चमारों की नीम, चमारों की गली, चमारों की पंचायत आदि–आदि वैसे ही स्कूल के साथ जुडी थी हमारी जात। जात पहले आती स्कूल में भी गिनती के पूरे अध्यापक न हुए थे। दो दो और कभी तीन – तीन कक्षाओं को एक एक अध्यापक सम्भालता बच्चे भेड़ बकरी की तरह कमरों

में भरे होत थे। अध्यापक लम्बी छुट्टी पर रहते थे या फिर दुसरे स्कूल में किसी न किसी तरह ट्रांसफर करा लेते थे। सही बात तो यह थी कि हमारे स्कूल में कोई सवर्ण जाति का अध्यापक आना ही नही चाहता था। इसके सीधे –सीधे दो कारण थे पहला यह कि स्कूल चमारों की बस्ती में था, दूसरा इसमें सभी चमारों के बच्चे पढ़ते थे, जो अध्यापक आ जाते थे, वे नाक भौह सिकोड़ कर पढ़ाया करते थे। हमारी ही बस्ती में हमारी ही जाति के नाम पर गालियाँ दे बैठते और हम सब सुनते थे।''[4]

हमारी भारतीय समाज व्यवस्था एक ऐसी मीनार की तरह है जिसमें ऊपर की मंजिलपर ब्राहम्ण उसकें नीचे की मंजिल पर क्षत्रिय उस से नीचे वैश्य, उससे नीचे शुद्र और सबसे नीचे अतिशूद्र सबके बोझ से दबा हुआहै। इन मंजिलों में सीढ़िया भी नही है। रास्ते तो बिल्कुल बन्द है कोई वर्ण यहॉ ऊपर से नीचे नही आ जा सकता।

दलितों को हमेशा से अपवित्र माना गया है उन पर कई र्नियोग्यताऍ लाद दी गई है, दलितों को हर प्रकार की सुविधाओं से वंचित रहना पड़ता है।

सूरजपाल चौहान जी अपने शिक्षक का व्यवहार बताते हुए लिखते है–

''मै तड़प उठता था द्रोणाचार्य की बातें सुनकर एक दिन अपने साथी अध्यापकों से मेरी और संकेत कर उसने कहा यदि देश के सारे चुहड़े चमार पढ़ लिख गए तो गली मुहल्लों की सफाई और जूते बनाने का कार्य कौन करेगा''[5]

एक शिक्षक जिसकें लिए सभी बच्चे समान होते है शिक्षक राष्ट्र का निर्माता होता है वो अपने देश का सृजनहार होता है परन्तु ये जातिवादी भेदभाव की विकृत मानसिकता है। दलित समाज को आगें बढ़ने से रोक रही है। पढ़ने की अटूट लालसा के कारण श्योराज सिंह बैचेन जी कहते है–

''मुझे पढ़ने को मिले तो मै अक्षरों के बदले अपने शरीर के खून की बूंदे भी दूंगा'[6]

ब्रहम्णवादी विचार धारा के एक शिक्षक की बेरहमी का वर्णन करते हुए ओम प्रकाश वाल्मीकि जी कहते है कि – '' उनके दोस्त सुक्खन के पेट पर पसलियों के ठीक उपर एक फोड़ा हो गया था जिससे हर वक्त पीप बहती रहती थी। कक्षा में वह अपनी कमीज ऊपर की तरफ मोड़कर रखता था ताकि फोड़ा खुला रहे। एक तो कमीज पर पीप लगने का डर था। दूसरे मास्टर की पिटाई के समय फोड़े को बचाया जा सकता था।

एक दिन मास्टर ने सुक्खन सिंह को पीटते समय उस फोड़े पर ही एक घूंसा जड़ दिया। सुक्खन की दर्दनाक चीख निकली फोड़ा फूट गया था। उसे तड़पता देखकर मुझे भी रोना आ गया था। मास्टर हम लोगों को रोता देखकर लगातार गालियाँ बक रहा था। ऐसी गालियाँ जिन्हे यदि शब्दबद्व कर दू तो हिन्दी की अभिजात्यता पर धब्बा लग जाएगा''[7]

आज भी अनेकों शिक्षण संस्थाओं में जातिगत भेदभाव देखने को मिलता है दलित शिक्षकों और दलित छात्रों के साथ लोग भेदभाव रखते है। इन्ही सब कारणों से हमारा देश पिछड़ रहा है। अगर हमारा समाज जातिगत भेदभावों से ऊपर उठे तो हमारा देश जरूर तरक्की करेगा।

''श्योराज सिंह बेचैन प्रेमपाल सिंह मास्टर के यहाँ रहते है। अपने काम के लालच में प्रेमपाल सिंह ने उन्हे रख लिया और उनसे खूब हाड़तोड़ काम लेते बचपन के इसी दर्द को बयाँ करते हुऍ–

''प्रेमपाल सिंह के लिए कृषि कार्य करता था। इसलिए वे निराई, जुताई, कटाई, वगेरह काम आग्रिम बता जाते थे और प्रायः मुझे छोड़केर स्कूल चले जाते थे। आकर बता देते थे। कि कितने पाठ पढ़ाए जा चुके है। इस तरह हर बार कहते– '' खेतों का काम देखो आकर बता दूंगा। पाठ याद कर लेना। मे हाजिरी लगवादूंगा। मतलब मेरा दाखिला तो गया था पर नियमित स्कूल जाने का अवसर मुझे फिर भी नही मिल पा रहा था। अपने काम के लालच में प्रेमपाल सिंह मुझे घर पर ज्यादा छोड़ने लगे और छुट्टियों में वे खूब तोड़ काम लेने लगे थे..... सुबह स्कूल नौ बजे जाना होता था। गुरू जी छह बजे खुद उठते और वे मुझे जगाकर काम बता देते। ''– मै तेरी हाजरी दिलवा दूंगा तू दो – तीन दिन खेत क्यार के काम देख ले। प्रेमपाल सिंह कहते है तू खेतों मवेशियों का हर काम संभाल लेता है दो मजदूरों का काम अकेला कर देता है''

घर में दूर से ही याचक की भांति रोटी मांगनी पड़ती थी इसलिए गुरू माता का यह व्यवहार मुझे परेशान करने वाला था। मै अपने उस विद्यार्थी जीवन को लेकर अकेले में कई बार फफक फफक कर रोने लगता था''[8]

दलित आत्मकथाओं के माध्यम से हम देखते है कि मनुवादियों ने अपने वर्चस्व को बनाये रखने के लिए दलितों को अशिक्षा और अज्ञान तथा अपनी षडयन्त्रकारी नीतियों के द्वारा शोषित और प्रताड़ित कर हमेशा गुलामी की जंजीरों में जकड़े रखा है।

आत्मकथाओं के माध्यम से हमें भारतीय समाज व्यवस्था के रूप और ढांचे सांचे का पता चलता है हम उसकी उन्नति और अवनिति से परिचित होते है। दलित जीवन क्या है, इसकी क्या– क्या परेशानियॉ है अपमान क्यो और कैसे होता है अभाव और यातना से पूर्ण जीवन कैसे जीते है इन अपमान और अभावों से ऊपर उठकर कैसे जिया जाता है। इन सभी के बारे में हमें आत्मकथाओं के द्वारा ही जानने को मिलता है।

अभाव ग्रस्त अपमानित जीवन से निराश हो चुकी पीढ़ी को इन आत्मकथाओं के माध्यम से प्रेरणा और शक्ति मिलती है। इन आत्मकथाओं के माध्यम से हमें दलित समाज में पल रहे बचपन का दर्द, बेबसी, अपमान, भेदभाव के साथ जीवन जीने को मजबूर शिक्षा प्राप्ति के लिए तड़प हमें स्पष्ट दिखाई पड़ती है। ये दलित आत्मकथाये दलित जीवन की समाजिक भेदभाव, असमानता आदि को हमारे सामने प्रस्तुत करनी है। इन आत्मकथाओं के द्वारा आने वाली पीढ़ी को अतीत की कुरूप अन्धकारमय भयानक सच्चाई जानकर उन्हें इन गन्दी परम्पराओं रीतिरिवाजों भेदभाव आदि से मुक्त होने की शक्ति आयेगी जिससे वे खुद को और अपने समाज को इन मनुवादी कठोर विचारधारा और भेदभाव से हमेशा के लिए मुक्त कर सकेगें और अपने जीवन में प्रगति करते हुए आगे बढ़ने में सफल होगें तथा अपने देश की प्रगति में भी सहायक बनेगें।

संदर्भ सूची

1. सूरज चौहान– संतप्त, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली सन् पृ0 38।
2. ओम प्रकाश वाल्मीकि– जूठन, वाणी प्रकाश सन् पृ0 14–15।
3. सुशीला टकभोरे– शिंकजों का दर्द, वाणी प्रकाशन पृ0 –22।
4. मोहनदास नैमिशराय– अपने– अपने पिंजरे, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली सन् 2001 पृ0 33।
5. सूरजपाल चौहान– तिरस्कृत, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली पृ0 16।
6. श्योराज सिंह बेचैन– मेरा बचपन मेरे कंधों पर वाणी प्रकाश, नई दिल्ली 2013, पृ0 340।
7. ओम प्रकाश वाल्मीकि' जूठन, राधाकृष्ण प्रकाशन, सन् 2017 पृ0 14।
8. श्योराज सिंह बेचैन– मेरा बचपन मेरे कंधों पर, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, सन् 2013 पृ0 310–333।